विविधता में एकता : भारत की सांस्कृतिक शक्ति

अमित भारद्वाज
गिरिजा शंकर

भारत की सांस्कृतिक विविधता राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने वाली एक महत्त्वपूर्ण शक्ति है। ग्रामीण परम्पराएँ, लोक प्रस्तुतियाँ, जनजातीय रीति-रिवाज़, मेले, उत्सव तथा पारम्परिक कलाएँ सामाजिक संवाद, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और सामूहिक सहभागिता के लिए जीवंत मंच तैयार करते हैं। यद्यपि आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण नई चुनौतियाँ प्रस्तुत कर रहे हैं, फिर भी सरकारी प्रयासों और सामुदायिक पहलों के माध्यम से इन अमूल्य सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण को बढ़ावा मिल रहा है। यह लेख इस बात का विश्लेषण करता है कि किस प्रकार ग्रामीण सांस्कृतिक परम्पराएँ सामाजिक समरसता को सुदृढ़ करने, सांस्कृतिक समन्वय को बढ़ावा देने तथा राष्ट्रीय पहचान को सुदृढ़ करने के प्रभावी माध्यम के रूप में कार्य करती हैं।

संस्कृति और परम्पराएँ भारतीय समाज के दो मूलभूत स्तंभ हैं। यह केवल उत्सव मनाने का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक जुड़ाव और सामूहिक एकता को सशक्त करने का एक प्रभावी साधन भी हैं। त्योहार विभिन्न जातियों, वर्गों और क्षेत्रों के लोगों को एक साथ लाकर 'विविधता में एकता' की भावना को मजबूत करते हैं।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों और धर्मों में उत्सवों के स्वरूप भिन्न हो सकते हैं, किन्तु उनका मूल उद्देश्य समान रहता है। कुंभ, पुष्कर, सोनपुर और भगोरिया जैसे मेले देश के अलग-अलग क्षेत्रों में आयोजित होते हैं और लोगों को आपसी सहभागिता के सूत्र में जोड़ते हैं। इसी प्रकार पंडवानी, विल्लु पाट्टु, दधी जथा तथा छाऊ नृत्य जैसी लोक परम्पराएँ धार्मिक, ऐतिहासिक और नैतिक मूल्यों का प्रसार करती हैं।

लेखक नीति आयोग में सीनियर कंसल्टेंट हैं। सह-लेखक विकास क्षेत्र के विशेषज्ञ हैं। ई-मेलः amit.bhardwaj@gov.in

"भारत की सांस्कृतिक शक्ति इसकी विविधताओं में निहित है, और यही विविधताएँ राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करती हैं।" ये परम्पराएँ विभिन्न क्षेत्रों, धर्मों और समुदायों के बीच एक सेतु का कार्य करती हैं। इकत बुनाई, ढोकरा धातु कला, वारली चित्रकला और बाउल संगीत जैसी कला परम्पराएँ भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को अभिव्यक्त करती हैं तथा देश की सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती रही हैं।

वैश्वीकरण के प्रभाव से लोगों के बीच आपसी निकटता बढ़ी है। प्रवासन, पर्यटन और डिजिटल माध्यमों ने सांस्कृतिक आदान-प्रदान के नए अवसर प्रदान किए हैं। किन्तु तीव्र शहरीकरण और आर्थिक दबावों ने पारम्परिक संस्कृति और पहचान के अस्तित्व को खतरे में ढाल दिया है। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए सरकार की विभिन्न पहलों तथा समुदाय-आधारित प्रयासों के माध्यम से हमारी सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण और संवर्धन की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किए जा रहे हैं।

सामाजिक समरसता के वाहक : लोक परम्पराएँ, मेले और उत्सव

भारत में उत्सव सामाजिक मेलजोल और एकात्मता का ऐसा अवसर प्रदान करते हैं, जहाँ विभिन्न समुदायों के लोग जाति और वर्ग से परे एक साथ सहभागिता करते हैं। यह केवल उत्सव मनाने का माध्यम नहीं बल्कि सामाजिक एकजुटता और सांस्कृतिक समन्वय को सुदृढ़ करने का प्रभावी साधन भी है। इसी प्रकार, मेले विभिन्न क्षेत्रों के श्रद्धालुओं, व्यापारियों, शिल्पकारों और पर्यटकों को एक मंच पर लाते हैं। उदाहरणस्वरूप, राजस्थान का पुष्कर मेला तथा बिहार का सोनपुर मेला प्रति वर्ष बड़ी संख्या में लोगों को आकर्षित करते हैं। ये आयोजन सांस्कृतिक आदान-प्रदान, व्यापार, आध्यात्मिक अनुभव और सामूहिक उत्सव के जीवंत केंद्र बनते हैं।

तालिका 1 : भारत के प्रमुख मेलों में सहभागिता

क्र. सं.	मेला	सहभागी (अनुमानित)	अवधि	प्रतिदिन औसत आगंतुक
1	पुष्कर	35 लाख	7 दिन	5 लाख
2	कुंभ	6600 लाख	45 दिन	146.67 लाख
3	सोनपुर	25–30 लाख	15 दिन	1.67–2 लाख

स्रोत : पीआईबी, टाइम्स ऑफ इंडिया, रेल डॉट कॉम

वर्ष 2025 में प्रयागराज में आयोजित महाकुंभ में 45 दिनों के दौरान लगभग 66 करोड़ श्रद्धालु शामिल हुए, जो प्रतिदिन औसतन लगभग 147 लाख श्रद्धालुओं के बराबर है। इस आयोजन में विभिन्न जातियों, वर्गों, क्षेत्रों और धार्मिक पृष्ठभूमियों से आए लोगों की उपस्थिति भारत की साझा आध्यात्मिक परम्परा, सामूहिक भागीदारी और समावेशी भावना को प्रतिबिम्बित करती है।

उत्सवों पर किए गए विभिन्न मानवशास्त्रीय अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि ऐसे आयोजन सामाजिक संबंधों को सुदृढ़ करते हैं, सांस्कृतिक आदान-प्रदान को प्रोत्साहित करते हैं तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी परम्पराओं के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

जनजातीय और स्वदेशी सांस्कृतिक परम्पराएँ : सामूहिक विरासत का आधार

भारत 705 अनुसूचित जनजातियों का देश है, जिनकी जनसंख्या देश की कुल आबादी का लगभग 8.6 प्रतिशत है। ये जनजातियाँ देश की सबसे प्राचीन तथा प्रकृति-आधारित सांस्कृतिक परम्पराओं को संरक्षित किए हुए हैं। मध्य प्रदेश की गोंड कला, महाराष्ट्र की वारली चित्रकला, गुजरात के भील नृत्य और झारखंड का संथाली संगीत जनजातीय सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के कुछ जीवंत उदाहरण हैं।

ये परम्पराएँ ऐसे समृद्ध जीवन दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करती हैं जिनमें समुदाय की समय, सृष्टि और अस्तित्व संबंधी समझ निहित होती है। उदाहरण के लिए झारखंड में मुख्यतः उराँव, मुंडा और हो समुदायों द्वारा वसंत ऋतु के आगमन पर मनाया जाने वाला सरहुल पर्व जनजातीय नववर्ष के रूप में भी मनाया जाता है। इस अवसर पर साल (सखुआ) वृक्ष की पूजा की जाती है, जिसे सरना माँ का निवास स्थान माना जाता है। यह परम्परा वन और पर्यावरण के प्रति आदर तथा प्रकृति को मानव जीवन का अभिन्न अंग मानने वाली जनजातीय आस्था को दर्शाती है। ऐसी सांस्कृतिक समस्याएं स्थानीय पारिस्थितिक ज्ञान के जीवंत अभिलेख हैं, जो मौखिक परम्पराओं तथा जनजातीय सामाजिक व्यवस्था के माध्यम से संरक्षित रहे हैं।

ग्रामीण सांस्कृतिक परम्पराएँ : क्षेत्र, धर्म और समुदायों के बीच सेतु

भारत में लोककथाएँ और लोकनृत्य सदैव कलात्मक अभिव्यक्ति के प्रभावी माध्यम रहे हैं। पूर्वी भारत का अर्धशास्त्रीय नृत्य 'छाऊ' सांस्कृतिक सेतु का उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसे यूनेस्को से 'अमूर्त सांस्कृतिक विरासत' के रूप में भी मान्यता प्राप्त है।

जब पूर्वी भारत में हिन्दू परम्पराओं का विस्तार हुआ, तब रामायण, महाभारत और पुराणों की कथाओं को छाऊ नृत्य के माध्यम से जनसामान्य तक पहुँचाया गया। समय के साथ इन महाकाव्य परम्पराओं ने ओडिशा, झारखंड और पश्चिम बंगाल के लोगों के बीच साझा सांस्कृतिक पहचान विकसित की। छाऊ ने केवल स्थानीय परम्पराओं को संरक्षित नहीं किया, बल्कि साझा धार्मिक आस्था और सामूहिक उत्सवों के माध्यम से ग्रामीण समाज को जोड़ने वाले जीवंत सांस्कृतिक सेतु के रूप में भी कार्य किया।

राष्ट्रीय पहचान के संरक्षण में मौखिक परम्पराएँ, स्थानीय भाषाएँ और कथावाचन की भूमिका

वैश्वीकरण के बढ़ते प्रभाव के साथ हमारी संस्कृति पर पश्चिमी प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। ऐसे समय में मौखिक परम्पराएँ हमारी सांस्कृतिक चेतना और ज्ञान को जीवित बनाए रखने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम रही हैं। कहानियाँ, लोकगीत, मान्यताएँ और सांस्कृतिक ज्ञान के अन्य रूप पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से हस्तांतरित होते रहे हैं।

ओडिशा में भागवत तुंगी लंबे समय से ऐसे सामुदायिक स्थल के रूप में कार्य करती रही है, जहाँ ग्रामीण एकत्र होकर धार्मिक कथाओं का पाठ और उन पर चर्चा करते हैं। छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश और ओडिशा की पंडवानी भी मौखिक परम्परा का एक सशक्त उदाहरण है, जिसने महाभारत की कथाओं को जीवित बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वहीं तमिलनाडु और केरल की 'विल्लु पट्टू' लोककथाओं के माध्यम से सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों का प्रसार करती है। पंजाब में दधी जथा कथावाचन और लोक प्रस्तुतियों के माध्यम से सिख इतिहास, वीर गाथाओं और धार्मिक परम्पराओं को संरक्षित रखा गया है। ये परम्पराएं न केवल स्थानीय संस्कृति के संरक्षण में सहायक रही हैं बल्कि राष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान को भी संरक्षित किया है।

सांस्कृतिक एकता में ग्रामीण कला, शिल्प, संगीत और हस्तकरघा परम्पराओं का योगदान

भारत में कला और शिल्प लंबे समय से सांस्कृतिक आदान-प्रदान के प्रभावी माध्यम रहे हैं। हस्तनिर्मित वस्त्रों, मिट्टी कला, चित्रकला तथा विविध कलात्मक परम्पराओं के माध्यम से इन्हें बढ़ावा दिया गया है। उदाहरण के लिए, बिहार की मधुबनी चित्रकला में हिन्दू पौराणिक कथाओं, प्रकृति, ग्रामीण जीवन और सामाजिक परम्पराओं का चित्रण मिलता है। वहीं पंजाब की फुलकारी अपनी सूक्ष्म कढ़ाई के माध्यम से पुष्प और उपवन संबंधी आकृतियों को वस्त्रों पर सुंदर रूप से उकेरती है। महाराष्ट्र की वारली चित्रकला कृषि-आधारित सामुदायिक जीवन तथा प्रकृति के प्रति सम्मान को अभिव्यक्त करती है। इसी प्रकार ओडिशा, छत्तीसगढ़ और झारखंड की ढोकरा कला, जो 'लॉस्ट-वैक्स' (मोम ढलाई) तकनीक के लिए प्रसिद्ध है, जनजातीय जीवन, पशु-पक्षियों और प्रकृति से जुड़े विविध आयामों को अभिव्यक्त करती है।

संगीत भी संस्कृति और परम्पराओं के आदान-प्रदान का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम रहा है। बंगाल का बाउल संगीत सांस्कृतिक समन्वय का एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें हिन्दू वैष्णव परम्परा की भक्तिभावना, सूफी इस्लाम की आध्यात्मिक अनुभूति तथा बौद्ध सहजयान की तांत्रिक अवधारणाओं का

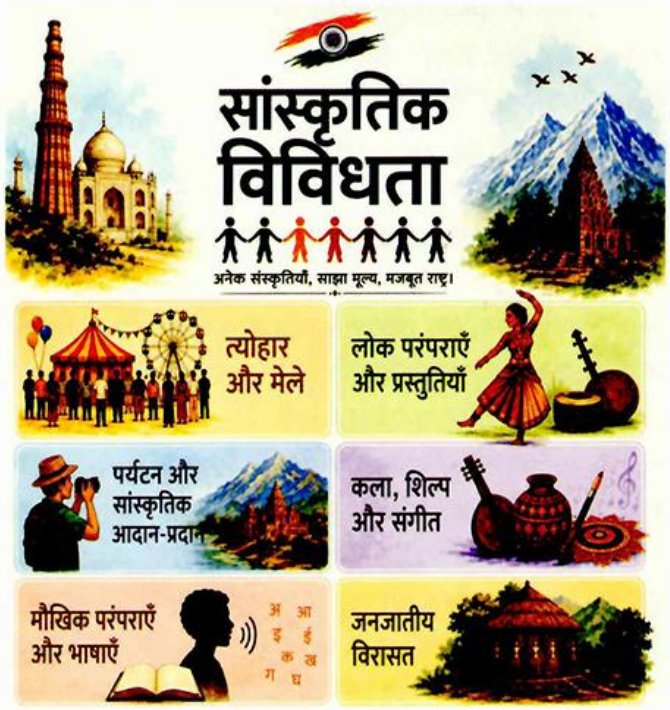

सुंदर संगम दिखाई देता है। इन कला परम्पराओं ने भारत की सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

ग्रामीण समुदायों को जोड़ने में प्रवासन, पर्यटन, डिजिटल माध्यम और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का प्रभाव

प्रवासन, पर्यटन, डिजिटल माध्यम और सांस्कृतिक आदान-प्रदान ने ग्रामीण भारत को विश्व से जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रवासन ने लोगों को नए विचारों, जीवनशैली, भाषाओं और सामाजिक व्यवहारों को अपनाने का अवसर दिया है। वहीं पर्यटन ने ग्रामीण समुदायों को अपनी संस्कृति और परम्पराओं को आगंतुकों के समक्ष प्रस्तुत करने के नए अवसर उपलब्ध कराए हैं।

उदाहरण के लिए, जम्मू-कश्मीर में पर्यटकों को फिरन तथा अरुणाचल प्रदेश में जादोह जैसे स्थानीय अनुभवों से परिचित कराना सांस्कृतिक आदान-प्रदान का एक बेहतरीन उदाहरण है। छत्तीसगढ़ के जशपुर जिले में होमस्टे स्थानीय समुदायों के दैनिक जीवन और जीवनशैली की झलक प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार ओडिशा के मयूरभंज स्थित बेलगड़िया पैलेस जनजातीय परम्पराओं, स्थानीय व्यंजनों और समृद्ध इतिहास से जुड़ा सांस्कृतिक अनुभव प्रदान करता है। इन पहलों ने ग्रामीण समुदायों को व्यापक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय समाज से जोड़ने में सहायता की है।

इसके अतिरिक्त, डिजिटल माध्यमों ने भौगोलिक सीमाओं से परे सांस्कृतिक आदान-प्रदान की संभावनाओं का विस्तार किया है। उदाहरणस्वरूप, हाल के राओलेन उत्सव के माध्यम से हिमाचल प्रदेश के किन्नौर की लगभग 5000 वर्ष पुरानी परम्परा को डिजिटल मंचों के ज़रिए पुनः व्यापक पहचान

मिली। इससे न केवल पर्यटन को बढ़ावा मिला, बल्कि विभिन्न क्षेत्रों के समुदायों के बीच संवाद और संपर्क भी मज़बूत हुआ।

सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण हेतु सरकारी पहल और सामुदायिक प्रयास

भारत सरकार ने ग्रामीण संस्कृति और परम्पराओं के संरक्षण तथा संवर्धन के लिए अनेक कार्यक्रम और नीतियाँ लागू की हैं। संविधान की पाँचवीं और छठी अनुसूचियाँ जनजातीय समुदायों की सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान के संरक्षण का प्रावधान करती हैं तथा उन्हें संसाधनों और स्थानीय शासन में सहभागिता का अधिकार प्रदान करती हैं।

वन अधिकार अधिनियम, 2006 तथा अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायतों का विस्तार अधिनियम (पेसा), 1996 समुदायों को उनके प्राकृतिक परिवेश में रहने और ग्रामसभा को सशक्त बनाकर उनकी परम्पराओं के संरक्षण में सहयोग करते हैं। जनजातीय कार्य मंत्रालय 705 अनुसूचित जनजातियों तथा 75 विशेष रूप से संवेदनशील जनजातीय समूहों की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण हेतु विभिन्न कार्यक्रम संचालित करता है।

लुप्तप्राय भाषाओं के संरक्षण एवं संवर्धन योजना (SPPEL) का उद्देश्य भारत की संकटग्रस्त भाषाओं का दस्तावेजीकरण और संरक्षण करना है। वर्ष 2023 में प्रारम्भ प्रधानमंत्री जनजाति आदिवासी न्याय महाअभियान (पीएम-जनमन) विशेष रूप से संवेदनशील जनजातीय समूहों तक बुनियादी सेवाओं की पहुँच सुनिश्चित करने पर केंद्रित है।

देश के जनजातीय अनुसंधान संस्थान जनजातीय भाषाओं, लोक परम्पराओं और शिल्पों के दस्तावेज़ीकरण और संवर्धन का कार्य करते हैं। प्रधानमंत्री जनजातीय विकास मिशन (PMJVM) तथा वन धन विकास केंद्र हस्तशिल्प, कौशल और आजीविका को बढ़ावा देते हैं।

संस्कृति मंत्रालय के अंतर्गत वर्ष 2017 में प्रारम्भ राष्ट्रीय सांस्कृतिक मानचित्रण मिशन (NMCM) ग्रामीण सांस्कृतिक संपदाओं का मानचित्रण कर उन्हें संस्थागत सहयोग उपलब्ध कराता है। वहीं क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्र विभिन्न राज्यों के कलाकारों को जोड़ने हेतु उत्सव, आदान-प्रदान कार्यक्रम और प्रशिक्षण आयोजित करते हैं। वर्ष 1952 से संगीत नाटक अकादमी की फेलोशिप एवं सहयोग योजनाएँ देशभर के 30,000 से अधिक कलाकारों को समर्थन प्रदान कर चुकी हैं।

नगालैंड में सरकार के सहयोग से आयोजित हॉर्नबिल उत्सव जनजातीय संगीत, नृत्य, चित्रकला और शिल्प के प्रदर्शन के लिए एक महत्त्वपूर्ण मंच प्रदान करता है। इसी प्रकार ओडिशा के रघुराजपुर, जिसे भारत का पहला विरासत शिल्प ग्राम भी कहा जाता है, में समुदाय आधारित प्रयासों के माध्यम से पट्टचित्र कलाकारों की परम्पराओं और कलात्मक विरासत को संरक्षित किया जा रहा है।

मध्य प्रदेश की एकलव्य फाउंडेशन ने जनजातीय भाषाओं में सांस्कृतिक संदर्भों पर आधारित शैक्षिक सामग्री विकसित कर संस्कृति और शिक्षा के बीच एक सशक्त सेतु स्थापित किया है। ये पहलें सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में समुदाय आधारित प्रयासों के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं।

समकालीन चुनौतियाँ और समावेशी सांस्कृतिक मूल्यों की दिशा

समृद्ध सांस्कृतिक विविधता के बावजूद भारत की ग्रामीण सांस्कृतिक व्यवस्था अनेक गंभीर समकालीन चुनौतियों का सामना कर रही है। भारत की भाषा जनगणना, 2011 के अनुसार देश लगभग 250 भाषाएँ खो चुका है। जनसंचार माध्यमों, विशेषकर एल्गोरिदम-आधारित सोशल मीडिया के एकरूपी प्रभाव ने क्षेत्रीय सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को सीमित करने वाली प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया है।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (NSSO) की 75वीं रिपोर्ट के अनुसार लगभग 40 प्रतिशत बुनकर अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने में कठिनाई का सामना कर रहे हैं। तीव्र शहरीकरण ने पीढ़ियों के बीच पारम्परिक ज्ञान के हस्तांतरण को प्रभावित किया है। ग्रामीण युवाओं का औपचारिक रोज़गार की ओर बढ़ता रुझान पारम्परिक आजीविकाओं से दूरी पैदा कर रहा है। वहीं जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा चक्र में परिवर्तन और समुद्र-स्तर में वृद्धि ने अनेक सांस्कृतिक-पारिस्थितिक आधारों के समक्ष नई चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं।

सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है–

1. स्थानीय भाषाओं के माध्यम से विद्यालयी पाठ्यक्रम में सांस्कृतिक शिक्षा का समावेश।
2. आर्थिक मॉडल ऐसे हो जो सांस्कृतिक श्रम को मान्यता दें तथा उचित बाज़ार पहुँच, सामाजिक सुरक्षा और बौद्धिक संपदा संरक्षण सुनिश्चित करें।
3. कानूनों में संग्रहालयों तक सीमित दृष्टिकोण से आगे बढ़कर जीवंत सांस्कृतिक परम्पराओं को मान्यता दी जाए तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए मंच विकसित किए जाएँ।
4. सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के लिए जलवायु परिवर्तन से जुड़ी चुनौतियों का प्रभावी समाधान किया जाए।

भारत के समक्ष चुनौती परम्परा और आधुनिकता अथवा राष्ट्रीय एकता और स्थानीय पहचान के बीच किसी एक का चयन करने की नहीं है। आवश्यकता ऐसे आर्थिक, विधिक और शैक्षिक ढाँचे के निर्माण की है जिसके अंतर्गत संस्कृति और परम्पराएँ समान रूप से विकसित, संरक्षित और समृद्ध हो सकें। ❑